DIVYAYATAN
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY

DIVYAYATAN -
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
Peer Reviewed Journal
E-ISSN: 3048-4928

निष्काम कर्मयोग की दार्शनिक अवधारणा और आधुनिक प्रासंगिकता : एक अध्ययन

स्मिता पांडुरंग कुलकर्णी[1] और जयराम कुशवाहा[2*]

[1]शोधार्थी, लकुलिश योग यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद, गुजरात
[2]सहायक प्राध्यापक, लकुलिश योग यूनिवर्सिटी, (जास्वन) अहमदाबाद, गुजरात
(संपर्क ईमेल: jpyoga52@gmail.com)

श्रीमद् भगवद्गीता यह केवल धार्मिक ग्रंथ नही है, भारतीय आध्यात्मिक साहित्य का एक अत्यंत अलौकिक और प्रेरणादायक दिव्य ग्रंथ है, जिसमें दार्शनिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक आयामों को कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के माध्यम से मानव जीवन के उद्देश्य, मानव जीवन की उन्नति, जीवन विकास और कर्तव्य का विवेचन किया है। भगवद्गीता की एक विशिष्टता है कि इसमें अर्जुन के विषाद और कर्तव्य-विमूढ़ता के माध्यम से समस्त मानव जीवन की जटिल समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है। जीवन के हर पल आने वाले छोटे बड़े संघर्ष का सहस पुरक सामना करने की शक्ति प्रदान करती है। भगवद्गीता का केंद्रीय सिद्धांत निष्काम कर्मयोग है, जो व्यक्ति को फलासक्ति से मुक्त करके मानसिक शुद्धि, चित्त की स्थिरता, आत्मशुद्धि तथा आत्मोन्नति की दिशा में अग्रेसर करता है। निष्काम कर्मयोग का आशय कभी भी कर्म से पलायन नहीं है , परंतु अपने कर्तव्यों का पालन बिना किसी भी फल की अपेक्षा से करना है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने 'गीता रहस्य' में कर्मयोग को गीता का मूल तत्त्व के रूप मे स्वीकारा और और इसे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का आधार माना। भगवान श्रीकृष्णजी के अनुसार कोई भी प्राणी एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता, किंतु कर्म को बंधनमुक्त तभी बनाया जा सकता है जब वह आसक्ति से रहित हो। क्योंकि मनुष्य को केवल कर्म करने का अधिकार है, फल पर उसका अधिकार नही होता है। आसक्ति से मुक्त रहना, जिससे मनुष्य अपने कर्म बंधन से मुक्त होता है। आसक्ति रहित कर्म का मतलब कर्म का त्याग करना नहीं है, फल की अपेक्षा से स्वयं को मुक्त करना ही त्याग होता है। भगवद्गीता निष्काम कर्म को ही आत्मोन्नति का सर्वश्रेष्ठ साधन कहा है। भगवद्गीता मे कर्म योग को 'निष्काम कर्म योग', 'बुद्धि योग',और केवल योग के नाम से भी वर्णन किया है। यह शोध-पत्र निष्काम कर्मयोग की दार्शनिक अवधारणा का विश्लेषण करते हुए आधुनिक जीवन की मानसिक, सामाजिक एवं नैतिक समस्याओं के समाधान में इसकी प्रासंगिकता का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: *कर्मयोग, निष्काम कर्म, सकाम कर्म, श्रीमदभगवद गीता, मोक्ष, नैतिकता।.*

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन मानव जीवन को केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं मानता है , उसे आध्यात्मिक लक्ष्य, आत्मिक उन्नति, मोक्ष-प्राप्ति और जीवन के नैतिक संतुलन से जोड़कर देखता है(Radhakrishnan, 1948)। जीवन मे कर्म, संघर्ष और सामाजिक दायित्वों के माध्यम से आत्मसाक्षात्कार और मोक्ष की प्राप्ति भारतीय दार्शनिक परंपरा का मूल उद्देश्य है। इस परंपरा में श्रीमद् भगवद्गीता का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण, शाश्वत,अनंत और सर्वव्यापी है। श्रीमद् भगवद्गीता भारतीय दर्शन का एक अनुपम धार्मिक-दार्शनिक एवं आध्यात्मिक सारभूत ग्रंथ है, जो महाभारत के भीष्मपर्व के अंतर्गत निरूपित है और जिसकी रचना लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व मानी जाती है (Dasgupta S., 1922)। कुरुक्षेत्र की रणभूमि में जब अर्जुन स्वजनों के हत्या के कारण मोहग्रस्त और विषादग्रस्त होकर कर्तव्य विमूढ़ हो जाता है, तब भगवान श्रीकृष्ण उपदेशात्मक संवाद के माध्यम से उसे धर्म, कर्तव्य, आत्मा, कर्म, योग, भक्ति और मोक्ष जैसे गूढ़ तत्वों का बोध कराते हैं (Shankar Bhashya, 2022) । भगवद्गीता श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य हुआ संवादात्मक ग्रंथ है, जिसे महर्षि वेदव्यास ने मानव कल्याण की भावना से विवरण किया। श्रीकृष्ण की दिव्य वाणी उस चेतना का प्रतिनिधित्व करती है, जो मानव को कर्तव्य के पथ पर स्थित रहने की प्रेरणा देती है।

गीता केवल धार्मिक ही ग्रंथ नहीं है , ये तो प्रज्ञा का स्रोत, वेदों का सार और उपनिषदों का दार्शनिक निष्कर्ष है। यह आत्मसाक्षात्कार और मोक्ष के मार्ग का दर्पण प्रस्तुत करती है, जो मानव जीवन को संतुलित, उद्देश्यपूर्ण और भावनात्मक रूप से समृद्ध बनाती है। श्रीमद् भगवद्गीता में कर्म को मुख्य स्थान प्राप्त है। श्रीकृष्ण स्पष्ट करते हैं कि कर्म का सर्वथा त्याग संभव नहीं है, क्योंकि प्रकृति के सत्त्व, रजस् और तमस् गुण सभी जीवों को कर्म करने के लिए प्रवृत्त करते हैं। भगवद्गीता कर्म का निषेध नहीं करती, लेकिन कर्मफल की आसक्ति का निषेध करती है। वासना, कामना और फल-आकांक्षा ही मनुष्य को कर्मबंधन में बाँधती हैं। अतः भगवद्गीता में संन्यास का अर्थ

© 2026 by Author

DIVYAYATAN -
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
Peer Reviewed Journal
E-ISSN: 3048-4928

कदापि ही कर्म का त्याग से नहीं है | संन्यास को कर्मफल की आसक्ति का त्याग बताया गया है। जैसे कमल का पत्ता जल में रहकर भी जलसे अलिप्त रहता है, वैसे ही मनुष्य को संसार में रहते हुए निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए(Shivananda, 2016)। निष्काम कर्मयोग मनुष्य को कर्म से विमुख नहीं करता, उसे कर्तव्यनिष्ठ बनाते हुए फलासक्ति के बंधन से मुक्त करता है। आधुनिक समाज में अत्यधिक अपेक्षाएँ, असफलता का भय और प्रतिस्पर्धा ये सब मानसिक दबाव उत्पन्न करते हैं। निष्काम भाव से किया गया कर्म व्यक्ति को परिणाम के चिंता से मुक्त कर समर्पण, दक्षता और मानसिक शांति प्रदान करता है।इस प्रकार कार्यक्षमता बढ़ती है और तनाव कम होता है । यह व्यक्ति को सामाजिक दायित्वों का पालन करते हुए भी मानसिक शांति, नैतिक दृढ़ता और आंतरिक संतुलन बनाए रखने की प्रेरणा देता है। निष्काम कर्मयोग सिखाता है कि हर एक कर्म को कर्तव्य समझकर निभाया जाए, न कि स्वार्थ या अपेक्षा से। इससे संबंधों में निष्कपटता, सहिष्णुता और नैतिकता का विकास होता है।। नैतिक संकटों से और मूल्य संघर्षों से ग्रस्त आधुनिक समाज में निष्काम कर्मयोग विवेकपूर्ण निर्णय लेने की की क्षमता प्रदान करता है। यह व्यक्ति को आत्मकेंद्रियता से ऊपर उठाकर लोककल्याण और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना से जोड़ता है। इस प्रकार निष्काम कर्मयोग न ही केवल आध्यात्मिक उन्नति का साधन बनाता है, बल्कि आधुनिक सामाजिक जीवन की जटिल समस्याओ के समाधान हेतु एक व्यावहारिक और समग्र जीवन-दृष्टिकोन प्रस्तुत करता है।

अध्ययन की पृष्ठभूमि एवं औचित्य

श्रीमद् भगवद्गीता भारतीय दार्शनिक परंपरा का एक मौलिक वैश्विक धरोहर है, जहा निष्काम कर्मयोग को जीवन के नैतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक उन्नति का प्रमुख साधन माना है। भगवद्गीता कर्म से पलायन का निषेध करते हुए कर्म को कर्तव्यपरायणता, लोककल्याण और आत्मोद्धार के साधन के रूप में प्रस्तुत करती है। निष्काम कर्मयोग -दर्शन न तो कर्म से पलायन का समर्थन करता है और न ही कर्म को केवल भौतिक उपलब्धि का साधन मानता है (Aurobindo, 1928) ।आधुनिक सामाजिक जीवन में परिणाम केंद्रित दृष्टिकोण, उपभोगवाद, तीव्र प्रतिस्पर्धा और अवास्तव भौतिक आकांक्षाओं ने मानव को मानसिक तनाव, नैतिक पतन तथा आत्मिक असंतुलन जैसी गंभीर समस्या निर्माण हो जाती है। इस कारण ही निष्काम कर्मयोग की दार्शनिक अवधारणा का समीक्षात्मक अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक एवं आवश्यक है (Pande, Namita, 2015)। भगवद्गीता के अनुसार कर्म से पलायन करना जीवन का उद्देश्य नहीं है, बल्कि निरंतर कर्म करके आत्मोद्धार करना ही मानवी जीवन का परम लक्ष्य है। इस संदर्भ में भगवद्गीता का यह श्लोक अत्यंत महत्वपूर्ण है-

"***उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्***" ***(भगवद्गीता 6/5)***

व्यक्ति के आत्मउद्धार और आत्मोन्नति की प्रेरणा देता है। मनुष्य स्वयं ही अपने उत्थान और पतन का कारण होता है याने की मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र और शत्रु है । कर्म कभी भी परस्थिति सापेक्ष न करके कर्तव्य भावना, लोक कल्याण से प्रेरित हो कर करने की शिक्षा निष्काम कर्मयोग देता है।गीता के अनुसार संन्यास का तात्पर्य कर्म-त्याग नहीं, कर्मफल-त्याग है-

"कामानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः" (भगवद्गीता 18/2)

(Shankar Bhashya, 2022)यह श्लोक स्पष्ट करता है कि वास्तविक त्याग तो कर्मफल के आसक्ति का है, न कि कर्म का। रणभूमी मे अर्जुन के मन मे उत्पन्न हुआ वैराग्य भी एक आसक्ति के कारण ही था जो बंधनकरक था इसलिए भगवान श्री कृष्ण ने निष्काम भावसे कर्तव्य पालन का उपदेश किया (Mulla & Krishnan, 2006)। यहां यह स्पष्ट होता है की सामाजिक, नैतिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से निष्काम कर्मयोग का समीक्षात्मक अध्ययन की अत्यंत आवश्यकता है (Pande, Namita, 2015)। यह न केवल भगवद्गीता के निष्काम कर्मयोग की गहराई को समझने में सहायक है, परंतु आधुनिक जीवन की कठिन समस्याओं के समाधान के हेतु भी एक व्यावहारिक और प्रासंगिक मार्ग भी प्रस्तुत करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

- भगवद्गीता में वर्णित कर्मयोग की भूमिका स्पष्ट करना
- निष्काम कर्मयोग की दार्शनिक अवधारणा का विश्लेषण करना
- आधुनिक जीवन की जटिल समस्याओं के समाधान में कर्मयोग की प्रासंगिकता स्थापित करना।
- निष्काम कर्मयोग के व्यावहारिक पक्षों का समीक्षात्मक मूल्यांकन करना।

© 2026 by Author

DIVYAYATAN -
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
Peer Reviewed Journal
E-ISSN: 3048-4928

अध्ययन की शोध प्रविधि

यह शोध गुणात्मक तथा विश्लेषणात्मक विधि पर आधारित है। जिसमे भगवद्गीता मे वर्णित कर्म योग, निष्कामकर्म का गहन अध्ययन किया गया है। भगवद्गीता के श्लोकों के दार्शनिक आशय, संदर्भ तथा उनकी व्यावहारिक व्याख्या का विश्लेषण किया गया है। आधुनिक काल मे कर्म योग की उपयोगिता, मानसिक, सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में तुलनात्मक समीक्षा और विश्लेषण किया गया है। भारतीय दर्शन से संबंधित ग्रंथ, शोध-पत्र, पत्रिकाएँ तथा विद्वानों के विचार सम्मिलित हैं। प्राप्त तथ्यों के तार्किक एवं दार्शनिक विश्लेषण कर निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं।

अध्ययन से संबंधित साहित्य की समीक्षा

निष्काम कर्मयोग मुख्यतः श्रीमद् भगवद्गीता में प्रतिपादन किया है, जहाँ कर्म को जीवन की आवश्यक क्रिया के रूप मे स्वीकार करते हुए अनासक्ति का अंगीकार करते हुए कर्म फल के त्याग के साथ कर्तव्यपालन पर विशेष बल दिया गया है(Verma, 2013)। कोई भी कर्म शुद्ध बुद्धि से करना चाहिए क्योंकि काम्य बुद्धिसे साम्य बुद्धि श्रेष्ठ होती है भगवद्गीता का यह प्रमुख कर्म-सिद्धांत है-

"तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥" (भगवद्गीता 3/19)

निष्काम कर्मयोग का यह आधारभूत सूत्र माना जाता है। इस श्लोक की व्याख्या करते हुए श्रीमद शंकराचार्यजी ने अपने गीता-भाष्य में स्पष्ट किया हैं कि जो कर्म अनासक्त भाव से किया गया वो कर्म चित्त-शुद्धि का साधन है। उनके अनुसार कर्म ही मोक्षप्राप्ति का प्रत्यक्ष साधन नहीं है, परंतु निष्काम कर्म मनुष्य को ज्ञानयोग के योग्य बनाता है। यही ज्ञान आत्मज्ञान बनकर मोक्ष का प्रत्यक्ष साधन है।(Shankar Bhashya, 2022) श्रीमद शंकराचार्यजी कर्म को अज्ञान निवारण के साधन के रूप में देखते है और निष्काम कर्मयोग को मोक्षोपयोगी ज्ञान की पूर्वभूमि के रूप में प्रस्तुत करते हैं।(Shankar Bhashya, 2022)

रामानुजाचार्यजी निष्काम कर्मयोग को भक्ति से अलग नहीं मानते, निष्काम कर्मयोग और भक्ति को अविभाज्य रूप मे मानते हैं। उनके अनुसार बुद्धि को ईश्वरसमर्पित करके किया गया कर्म भक्ति का ही स्वरूप है-

"यत्करोषि... तत्कुरुष्व मदर्पणम्" (भगवद्गीता 9/27)

माध्वाचार्यजी जो द्वैत का सिद्धांत को स्वीकारते है, वो कर्मयोग की व्याख्या करते हुए कर्मफल को ईश्वर की कृपा पर आश्रित मानते हैं-(Madhvacharya & Sonde, 2011)

"निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्" (भगवद्गीता 11/33)

टीकाकारों में दार्शनिक मतभेद होने पर भी एक बिंदु पर सहमति है की फलासक्ति से रहित कर्म ही मुक्ति का मार्ग है(Radhakrishnan, 1948)

भगवद्गीता में वर्णित कर्मयोग को लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकजी ने 'लोकसंग्रह' की भावना से जोड़ा गया है-

"लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि" (भगवद्गीता 3/20)

अपने ग्रंथ गीता रहस्य मे कर्मयोग को राष्ट्रनिर्माण सामाजिकदायित्व मानते हुआ स्वतंत्रता का आंदोलन की आधार शीला बनायी और निष्क्रियता के विपरीत एक सक्रिय सामाजिक दर्शन माना (Tilak, 1965)। आधुनिक युग में स्वामी विवेकानंद ने निष्काम कर्मयोग को मानव जीवन के लिया अत्यंत अनिवार्य माना है (Vivekananda, 2013)।उनके अनुसार आत्मविकास या आत्मोन्नति केवल जागरूक, उद्देशपूर्ण और साहसी कर्म से ही संभव है-

"सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते" (भगवद्गीता 2/48)

स्वामी विवेकानंद जी ने समत्व को जाग्रत कहा है। याने कार्य के लिए उठ खडे होना। उसी समत्वयुक्त भावसे जहा व्यक्ति फल की आसक्ति से मुक्त होकर लोककल्याण की ओर प्रगति के किए कार्यरत राहता है। इस प्रकार निष्काम कर्म योग का समीक्षात्मक अध्ययन एक बहुआयामी अध्ययन होगा न केवल भगवद्गीता के कर्मयोग की गहराई समझने हेतु आवश्यक होगा परंतु कर्मयोग की दार्शनिक अवधारणा और आधुनिक जीवन में उसकी प्रासंगिकता के अध्यायन हेतु भी महत्वपूर्ण है। यह अध्ययन मानव जीवन की नैतिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु एक महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करता है।

© 2026 by Author

DIVYAYATAN
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY

DIVYAYATAN -
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
Peer Reviewed Journal
E-ISSN: 3048-4928

विमर्श

आधुनिक जीवनकाल में कर्म केवल किसी एक आदत, व्यवस्था और किसी दबाव के आधीनता से किया जाता है। व्यक्ति कर्म तो करता है, लेकिन उसमें चेतना का और उद्देश्य का अभाव रहता है (Cziksentmihalyi, 1990)। इस कारण ही मनुष्य यंत्रवत कर्म करता है और मनुष्य को अंदर से शून्य बना देती है। इस स्थिति को दूर करके स्वउन्नति का उपाय भगवद्गीता मे दिया है (Verma, 2013)।

"योगः कर्मसु कौशलम्" (भगवद्गीता 2/50)

अर्थात कर्म में कुशलता ही योग है। यह कुशलता कोई तकनीक नहीं, जागरूकता से और विवेक से किया गया कर्म है। निष्काम कर्मयोग किसी भी कार्य को केवल जीविका का कार्य न मानकर कर्तव्य और आत्म-विकास का साधन बनाता है, जो व्यक्ति को साधन और साध्य दोनों से जोड़ता है। । जब कोई भी कर्म चेतना से युक्त किया जाता है, तब वह बोझ नहीं बना रहता, साधना बन जाता है। आज आधुनिक काल मे परिणामों को देख कर ही सफलता का मूल्यांकन किया जाता है। फल आसक्ति के कारण मनुष्य मे भय,चिंता, तुलना और निरंतर तनाव होता है।। इस आसक्ति से मुक्तिपाने का मार्ग भगवद्गीता दिखाती है-

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" (भगवद्गीता 2/47)

इस श्लोक में श्रीकृष्ण ने स्पष्ट किया है की कर्म के अधिकार को स्वीकार करते हुए फल आसक्ति का निषेध करना। निष्काम कर्मयोग फल का त्याग नहीं सिखाता, कर्मफल को ही कर्म का मुख्य केंद्र न बनने देना यह सीख देता है । इस तरह व्यक्ति बाहरी परिणामों पर निर्भर नहीं रहता और मानसिक असंतुलन नहीं होता है (Mulla & Krishnan, 2006)। आधुनिक जीवन में नैतिक मूल्य भी सदैव तुलनात्मक होता जा रहा है। सही और गलत का आकलन अब सिद्धांतों के आधार पर नहीं, लेकिन सुविधा, लाभ और व्यक्तिगत स्वार्थ के आधार पर होने लगा है। ऐसी स्थिति में मनुष्य नैतिक दुविधा और मूल्य संकट से घिर जाता है। निष्काम कर्मयोग इस संकट का समाधान पेश करता है, क्योंकि वह नैतिकता को सदा ही बाहरी नियमों से और सामाजिक दबाव को न देखकर कर्तव्यनिष्ठ आधारित निर्णय करता है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" (भगवद्गीता 3/35)

अर्थात्- अपने कर्तव्य में मर जाना भी श्रेयस्कर है, जबकि दूसरे के धर्म का अनुकरण करना बेहद भयावह है। यह श्लोक ये स्पष्ट करता है कि मनुष्य का स्वधर्म और कर्तव्य-बोध ही नैतिक स्थिरता का आधार है (Mulla & Krishnan, 2014)। निष्काम कर्मयोग मनुष्य को उसके सामाजिक स्थान, भूमिका और उत्तरदायित्व के प्रति सचेत बनाता है, जिससे नैतिक निर्णय अधिक विवेकपूर्ण, सुसंगत और तार्किक हो जाते हैं (Model, 2025)।

आधुनिक समाज में सामाजिक कर्तव्य भावना का स्वरूप भी विसंगत होता जा रहा है। सेवा, दान और सामाजिक कार्य अधिकतर प्रतिष्ठा, प्रचार या संतोष की आकांक्षा से किया जा रहा हैं। इस प्रवृत्ति को निष्काम कर्मयोग रूपांतरित करता है और सामाजिक कर्म को समग्र समाजहीत तथा ईश्वरार्पण की भावना से जोड़ता है (Tilak, 1965)। भगवद्गीता में कहा गया है-

"यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः" (भगवद्गीता 3/9)

अर्थात यज्ञार्थ, यानी समग्रसमाज कल्याण के लिए किया गया कर्म बंधन नहीं उत्पन्न करता । इस दृष्टि से प्रशासन, शिक्षा, चिकित्सा और सेवा जैसे क्षेत्रों में किया गया कर्म यदि निष्काम भाव से हो, तो वह न केवल व्यक्ति को मुक्त करता है, परंतु समाज में करुणा, न्याय और कर्तव्य का संतुलन भी स्थापित करता है। आधुनिक समाज में मनुष्य बाहरी रूप से स्वतंत्र दिखाई देता है, किंतु वह भीतर से इच्छाओं, भय, अपेक्षाओं और प्रतिस्पर्धा के बोझ से दब चुका है। यह पराधीनता ही मानसिक अशांति,तनाव, चिंता और असंतुलन को जन्म देती है | यह बंधन मनुष्य को निष्काम कर्मयोग मुक्त करके आंतरिक शांति प्रदान करता है। श्रीकृष्ण स्थितप्रज्ञ का वर्णन करते हुए कहते हैं-

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः" (भगवद्गीता 2/56)

जो व्यक्ति दुःख में विचलित नहीं होता और सुख में आसक्त नहीं होता, वही स्थितप्रज्ञ है। (*Bhagavad Gita(*साधक संजीवनी), n.d.)स जब कर्म इच्छा से प्रेरित न होकर कर्तव्यभावना से प्रेरित होता है, तब परिस्थितिया व्यक्ति को प्रभावित नहीं करती लेकिन शांत, स्थिर और संयमित बनाती है। यही मानसिक संतुलन मानव जीवन की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है। निष्काम कर्मयोग जीव(*Bhagavad Gita(*साधक संजीवनी), n.d.)न से पलायन नहीं,बल्कि जीवन की कठनाइयो पर मात कर जीवन जीने की कला सिखाता है।

"न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते" (भगवद्गीता 3/4)

इस श्लोक के अनुसार कर्म त्याग के बिना ही बंधनमुक्त हो सकता है। इसे निष्काम कर्म का अंतिम सत्य माना जाता है| कर्म-त्याग से नहीं, कर्म में ही अनासक्ति से मुक्ति मिलती है (Aurobindo, 1928) | इसलिए, निष्काम कर्मयोग आज भी जीवन में बहुत महत्वपूर्ण है।

© 2026 by Author

DIVYAYATAN -
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
Peer Reviewed Journal
E-ISSN: 3048-4928

निष्कर्ष

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष स्पष्ट होता है कि श्रीमद् भगवद्गीता में जो निष्काम कर्मयोग का जो वर्णन है वो केवल एक दार्शनिक अवधारणा नहीं है यह मानव जीवन के लिए एक मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, व्यावहारिक तथा मूल्याधारित जीवन याने नैतिक जीवन की नई दृष्टी देता है। भगवद्गीता का कर्मयोग फल के आसक्ति के त्याग भावना से कर्तव्यपरायण की भावना मानता है | कर्म भावना को आत्मशुद्धि और आत्मोन्नति का साधन के रूप मे सिद्ध करता है। निष्काम भाव से किया गया कोई भी कर्म मानसिक संतुलन, आत्मसंयम तथा नैतिक दृढ़ता को बढ़ाता है, जो कर्म बंधन का कारण न बनकर मुक्ति की दिशा में मार्गदर्शक बनता है। आज आधुनिक सामाजिक जीवन में मानसिक तनाव, प्रतिस्पर्धा, अवजवी भौतिक आकांक्षाएँ के संदर्भ में निष्काम कर्मयोग व्यक्ति को मानसिक शांति, स्थिरता, नैतिकत और उत्तरदायित्व का बोध प्रदान करता है। इस प्रकार यह अध्ययन न केवल व्यक्तिगत जीवन को संतुलित करता है, बल्कि सामाजिक सलोखा और लोक कल्याण की दिशा में भी मार्गदर्शक सिद्ध होता है। अतः निष्काम कर्मयोग का दार्शनिक अध्ययन आधुनिक जीवन की जटिल समस्याओं के समाधान का साधन हेतु एक प्रासंगिक शोध कार्य है है।

REFERENCES

Aurobindo, S. (1922). *Essays on the Gita*. Sri Aurobindo Ashram
Radhakrishnan, S. (1948). *The Bhagavadgita*. George Allen & Unwin.
Dasgupta, S. (1922). *A history of Indian philosophy* (Vol. 1). Cambridge University Press.
Csikszentmihalyi, M. (1990). *Flow: The psychology of optimal experience*. Harper & Row.
Model, A. (2025). Karma Yoga and moral decision-making in contemporary India. *Journal of Indian Philosophy and Religion*
Mulla, Z. R., & Krishnan, V. R. (2006). Karma yoga: A conceptualisation and validation of the Indian philosophy of work. *Journal of Indian Psychology*.
Mulla, Z. R., & Krishnan, V. R. (2014). Karma yoga: Its conceptual basis and empirical validation. *Journal of Business Ethics*
Pande, N., & Naidu, R. K. (1992). Anasakti and health: A study of non-attachment. *Psychology and Developing Societies*
Verma, J. (2013). *Karma yoga in Bhagavad Gita and its application in practical life*. Annals of Philosophy and Life Studies.
Bhagavad Gita. (n.d.). *Shrimad Bhagavad Gita (Gita Press ed.)*. Gita Press.
Shankaracharya. (2022). *Shrimad Bhagavad Gita: With Shankara Bhashya*. Gita Press.
Sivananda, S. (2016). *The Bhagavad Gita*. The Divine Life Society.
Ramanujacharya. (2008). *Shrimad Bhagavad Gita: With Ramanuja Bhashya*. Gita Press.
Madhvacharya. (2011). *Shrimad Bhagavad Gita: With Madhva Bhashya*. Gita Press.
Tilak, B. G. (1965). *Shrimad Bhagavad Gita Rahasya (Gita Rahasya)*. Kesari Prakashan.
Vivekananda, S. (2013). *Thoughts on THE GITA*. Advaita Ashrama.
Athavale, P. (2005). *Geetamrutam*. Swadhyaya Parivar Prakashan.

© 2026 by Author